(MIJ) 2020, Vol. No. 6, Jan-Dec **e-ISSN: 2454-924X; p-ISSN: 2454-8103**

समावेशी शिक्षा के विकास में प्राथमिक विद्यालयों का योगदान

***कुमारी नम्रता, **डा॰ मौसमी चौधरी**
***शोधार्थी, बी॰बी॰ए॰ बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर, बिहार**
****पर्यवेक्षिका**
विभाग्याध्यक्ष , शिक्षा संकाय ,
एम्॰डी॰डी॰एम्॰ कॉलेज,बी॰बी॰ए ॰ बिहार विश्वविद्यालय ,
मुजफ्फरपुर ,बिहार

समावेशन एक विचार है जहाँ विविधता है वहीं समावेशन है। एक विचार अथवा अभ्यास या व्यवहार के रूप में समावेशन पर सार्थक चर्चा तब तक नहीं हो सकती जब तब यह समूह के सदस्यों में विविधता को नहीं समझ लेते। विविधता का अर्थ विभिन्ताओं से है। विविधता शब्द जब सामाजिक संदर्भ में उपयोग किया जाता है तब अधिक विशिष्ट होता है तथा संकेत करता है कि लोगों का एक समूह व्यक्तियों से बना है जो कुछ तरीके से या अन्य तरह से एक–दूसरे से भिन्न हैं। इसका अर्थ लोगों में सामूहिक विभिन्ताएँ हैं। उदाहरणार्थ संस्कृति, भाषा, जेंडर, शारीरिक बनावट (त्वचा का रंग, बाल के प्रकार) सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, पारिवारिक संरचना, योग्याताएँ (,सामाजिक, सृजनशीलता तथा बौद्विक) मूल्य एवं आस्था में भिन्नताएँ **(जिंगरान, 2009)**

हलाँकि विविधता शब्द समरूपता का विपरीतार्थक है। समरूपता का अर्थ कुछ प्रकार की समानता है जो लोगों के एक समूह को विशेषित करती है। अंग्रेजी में समरूपता या समरूपता को भन्दपवितउपजल कहते है। न्दप का अर्थ एक तथा वितउ का अर्थ समान रास्ते या विधियाँ है। अतः जब सभी लोगों में कुछ मुख्य समानता हो तो हम कहते ळें कि लोगों के उस समूह में समानता हैं। विविधता की तरह समरूपता भी एक सामूहिक अवधारणा है। जब लोगों का एक समूह एक समान विशेषता, भाषा या धर्म या कुछ भी समानता होने पर विशेषताओं के कारण समरूपता समझा जा सकता है। परन्तु जब विभिन्न प्रजातियाँ, धर्मों तथा संस्कृतियों से सम्बन्धित लोगों के समूह को इंगित करता है तब विविधता का अर्थ भिन्नता है।विविधता का विषय क्षेत्र सामाजिक समूहों को पहचान के साथ बढ़ता जाता है। ये समाज द्वारा मान्य एवं स्वीकार्य विषयों के लिए विभिन्न रणनीतियाँ बनाते है। विविधता की अवधारणा किसी समूह के सदस्यों की स्वीकार्यता एवं सम्मान को सूचित करती है। यह समाज में समता एवं न्याय की तरफ सकारात्मक

रूप में प्रवृत्त राजनीतिक परिप्रेक्ष्य से अधिभारित है।

विविधता समावेशन से संबंद्व कराती है। समाज के प्रत्येक सदस्यों में एकात्मकता की भावना तथा अपनेपन की समझ को विकसित करती है। यह विविधता ही व्यक्तियों की योग्याताओं, निशक्ताओं, सामाजिक स्तर, धर्म, वर्ग, जाति आदि के भेदभाव के बिना समूह में प्रत्येक व्यक्तियों के लिए समता एवं न्याय को बहस के केन्द्र में लाती है।

अतः कहा जा सकता है कि यह विविधता कुछ लोगों का बहिष्करण है जो अपने समूह में बहुसंख्य से अलग होते हैं। इसी तथ्यों में वर्त्तमान शैक्षिक जगत में एक महत्वपूर्ण सोच समावेशन को जन्म दिया है।

हमारे समाज में निम्नलिखित विविधताएँ मौजूद हैः–

भाषायी विविधता

विश्व में अनेक देशों की तहर भारत भी बहुभाषी देश है। जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण भाग बहुभाषी है। बहुत सी भाषाएँ हैं जो सामाजिक संप्रेषण में प्रयुक्त होती हैं, जो प्रायः अन्य भाषाओं का मिश्रण होती हैं, एक भाषा से दूसरी भाषा बन जाती है। कई समुदायों में भाषा का प्रयोग कई रूपों में किया जाता है। उदाहरणस्वरूप माता–पिता अपनो बच्चों के साथ घरेलू या क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग जबकि अपनी पैतृक भाषा अपने बुजुर्गो के साथ प्रयोग करते है।

सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता

सांस्कृतिक विविधता का अर्थ विश्व में मानव समाज या संस्कृतियों के विभिन्न प्रकारों के समूह, संगठन या धर्म के विविध्तापूर्ण संस्कृतियों से है। इसे बहुसंस्कति भी कहा जाता है। इसमें विभिन्न सामाजिक संरचनाएँ प्रथाएँ एवं विश्व के विभिन्न भागों में जीवन परिस्थितियों के समायोजन के लिए संस्कृतियों में निहित जीवन पद्वतियाँ सम्मलित होती है। ''सांस्कृतिक विविधता'' को कभी–कभी एक विशिष्ट प्रदेश या विश्व में विभिन्न मानव समाजों या संस्कृतियों के अर्थ के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। हजारों वर्षो के बाद भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक प्रभावों ने भारतीय संस्कृति का धर्म कई रूपों में हमारे संस्कृति का आधार हैं। यह भारत में जीवन एक संस्कृति के प्रत्येक पक्षों से घनिष्ठतापर्वूक जुड़ा है तथा हमारी विवधिता का प्रमुख कारक है। वास्तव में, भारत में प्रत्येक प्रदेश की अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के साथ स्वयं की पहचान है जो पड़ोसी या अन्य प्रदेश से बिल्कुल भिन्न है। त्योहोरों के प्रकार, इनकों मानाने के तरीके भी

अलग हैं। धर्मिक परंपराएँ प्रत्यके प्रदेश की अनूठी पहचान में योगदान देती है। यह प्रतयेक राज्य के विभिन्न प्रदेशों की सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि को प्रदर्शित करते हैं।

आर्थिक विविधता

समाज में विद्यमान विभिन्न सामाजिक वर्ग एवं उनमें विद्यमान अंतर हमारी आर्थिक विविधतओं प्रदर्शित करते है। पहले में विद्यमान जाति व्यवस्था की कड़े काफी मजबूत है। अतः शिष्य ऊँची जातियों का एकाधिकार था। अतः वर्ण व्यवस्था को भी हमारे समाज में आ गया। यह वर्ण–व्यवस्था दो आर्थिक विमलता को दर्शाता है।

जेंडर विविधता

जेंडर एक सामाजिक अवधारणा है जबकि किसी व्यक्ति का लिंग एक जैविक स्थिति होती है। जेंडर विविधता का अर्थ लोगों के साथ उनके लिंग के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में भिन्नता है। प्राचीन काल से ही एक महिला को पुरूषों से कमजोर समझा जाता रहा है। एक बच्चे के रूप में महिला अपने पिता एक पत्नी के रूप में अपने पति तथा एक बूढ़ी माँ अपने बेटे द्वारा संरक्षण प्राप्त करेगी। उसकी भूमिका बच्चे पैदा करना तथा परिवार में प्रत्येक सदस्य की देखभाल करना माना जाता था। एक पुरूष को परिवार के लिए जीविकोपार्जक, संरक्षक तथा उद्धारक के रूप में देखा जाता है। महिलाओं एवं पुरूषों की इस सामाजिक भेदभावपूर्ण स्थिति से लड़कियों एवं लड़कों के जीवन अनुभव उनके लिंग के कारण बहुत भिन्न हो जाते है। यह भिन्नता विभिन्न प्रदेशों में भिन्न स्तर पर होती है, जो हमारे समाज में विद्यमान को दर्शाती है।

सामाजिक बहिष्करण एवं समावेशन की अवधारणा

समाजिक बहिष्करण शिक्षा, समाजशास्त्र, मनोवज्ञिान राजनीति विज्ञान तथा अर्थशास्त्र सहित सभी विषयों में प्रयुक्त एक पद है। समाज का कोई भी अगर बहुसंख्यक जनसंख्या के मानकों से अलग होता है तो वह किसी न किसी रूप में सामाजिक बहिष्करण दी है।

"बहिष्कृत एवं अलक्ष्य" में यूनिसेफ रिपोर्ट, 2006, सामाजिक बहिष्करण की परिभाषा बहिष्करण के भौतिक निर्धनता से व्यापक अवधारणा बनाते हुए आर्थिक, सामाजिक, जेंडर, सांस्कृतिक तथा राजीतिक अधिकारों को वचन को सम्मिलित करते हुए बहुआयामी रूप में स्वीकार्य है। यद्यपि, निर्धनता एवं सामाजिक बहिष्करण के बीच घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्ध है तथा निर्धनता का

एक प्रमुख कारण बेरोजगारी है।

निःशक्त व्यक्ति अधिक कमजोर समूह हैं जो सामाजिक बहिष्करण के संकट में है। निःशक्त जनसंख्या विश्व जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत सम्मिलित है, यह जनसंख्या भोजन, वस्त्र, मूलभूत शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, रोजगार के अवसर तथा जीवन की आवश्यक सेवाओं से भी बहिष्कृत हैं, जो अंततः लोगों के गतिविधियों में उनकी सहभागिता को प्रभावित करते हैं। अंततोगत्वा समाज में उनके बहिष्करण को अग्रसार करते है। यह भी अवलोकन कर सकते है कि इस जनसंख्या को अमान्य के रूप में देखा जाता है, वे हिंस, दुर्व्यवहार तथा शोषण के संकट में है तथा अपने अधिकरों के संरक्षण को छोड़ते है। ऐसी जनसंख्या धीरे–धीरे अदृश्य होती है यदि उनके संपूर्ण अस्तित्व को नकारा जाता है।

सामाजिक व्यवस्थाओं निःशक्त शिशुओं एवं बच्चों का शीघ्रता से पता लगाने पहचानने तथा हस्तक्षेप करने हेतु सुविधाएँ प्रदान करने, उनके माता–पिता एवं पालनकर्त्ताओं की सहायता प्रदान करने में असफल हैं, यह द्वितीयक निःशक्तता स्थितियों को उत्पन्न करते है जो आगे शैक्षिक अवसरों से लाभ हेतु उनकी क्षमता को सीमित करते है। निःशक्त बच्चों एवं युवाओं के लिए शैक्षिक अस्वीकार्यता व्यावसायिक प्रशिक्षण, रोजगार तथा आय के उपार्जन की पहुँच से उनको वंचित करता है। इस प्रकार इसके प्रभाव स्वरूप उनकी आर्थिक तथा सामाजिक आत्मनिर्भरता उनको पीढ़ी दर पीढ़ी निर्धनता की तरफ अग्रसर करता है। **(बार्न्स, 2012)**

यदि एक समाज समावेशी है इसका अर्थ है कि यह निःशक्तता को समझता , स्वीकारता तथा सम्मान करता है। यह न केवल विवधिता को मान्यता देता है यद्यपि इसे सम्मिलित करता है ताकि विविधतापूर्ण समाज का प्रत्येक सदस्य अपने जीवन में पूर्ण संभावना को प्राप्त कर सके। ऐसी सामाजिक परिस्थितियों में समुदाय एवं समाज के प्रति समग्र रूप से अपनेपन की समझ प्रत्येक सदस्य में होती ळें

सामाजिक समावेशन

सामाजिक समावेशन के मूल में जीवन के सभी पक्षों में पूर्ण सहभागिता की अवधारणा निहित है, जबकि बहिष्करण का अर्थ वह स्थिति है जो समावेशन को अवरोधित करती है। सहभागिता अति महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सामाजिक गतिविधियों में केवल होने यद्यपि उनको संल्गन करने तथा सामाजिक तंत्र बनाने एवं बनाए रखने के लिए सक्रिय सम्मिलित होने पर बल

देती है।

समावेशित लोगों, समुदाय या संस्थान के प्रति उत्तरदायित्व की मापना को बल प्रदान करती है। सामाजिक समावेशन का अर्थ व्यक्तियों की पृष्ठभूमि जैसे धर्म, वर्ग, लिंग, प्रजाति था। किसी प्रकार की विविधता के लिए सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक गतिविधियों के साथ निर्णय प्रक्रिया मरे सहभागिता सहित जीवन के सभी पक्षों में संपूर्ण एवं सक्रिय सहभागिता के लिए सभी को समान अवसर सुनिश्चित कराने हेतु प्रयास ही सामाजिक समावेशन एक लक्ष्य, एक उद्देश्य तथा एक प्रक्रिया के रूप में मापा जा सकता है। इसी क्रिया –– सभी सामाजिक गतिविधियों को प्रभावित करती है।

भारतीय संदर्भ में निःशक्त लोगों के समावेशन का इतिहास

प्राचीन

वैदिक काल में हमारे पास अष्टावक्र का उदाहरण है जो दीर्घकालिक एवं गंभीर अस्थि विकलांगता से ग्रसित थे, लोगों की योग्यता एवं निःशक्तता के भेदभाव के बिना सभी के लिए शैक्षिक सुविधाओं के बिना भी विद्वान हुए।

स्वतंत्रता पूर्व

मध्यकालीन भारत में निःशक्त लोगों की देखभाल एवं संरक्षण के लिए राजकीय कोष तथा दान कार्य चलता रहा। मुगल तथा मराठा शासक निःशक्त व्यक्तियों तथा निर्धनों के लिए दान करते थे। निःशक्त व्यक्तियों के लिए सहानुभूति, संरक्षण तथा देखभाल की प्रवृति प्रबल थी। बधिरों के लिए सन् 1883 में, नेत्रहीनों के लिए सन् 1887 में तथा मानसिक विकलांगता (वर्त्तमान में बौद्धिक निःशक्तता) के लिए सन् 1949 में विशेष विद्यालय की स्थापना एक महत्वपूर्ण विकास था। विशेष विद्यालय की स्थापना किश्चयन मिशनरियों एवं देश के दानार्थ संगठनों को दिया जाता है।

स्वत़ंत्रता पश्चात्

स्वतंत्रता पश्चात् भारत में में निःशक्त बच्चों की शिक्षा पर ध्यान देने का विशेष प्रयास किया गया। चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशक्त एवं अनिवार्य सार्वभौमिक, प्राथमिक शिक्षा का उल्लेख करते हुए संविधान के अनुच्दे 45 में विशेष प्रावधान किया गया,

(MIJ) 2020, Vol. No. 6, Jan-Dec **e-ISSN: 2454-924X; p-ISSN: 2454-8103**

विभिन्न पंचवर्षीय योजना में निःशक्त लोगों की शिक्षा पर एवं कोठारी आयोग (1964–66) में बल दिया गया। निःशक्त बच्चों हेतु समेकित शिक्षा योजना 1974 में आरंभ की गई जो सन् 1985 के जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना के साथ सन् 1997 में सम्मिलित हो गई जिसने स्पष्ट किया कि प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण केवल तभी संभव है यदि निःशक्त बच्चे शैक्षिक परिधि में आते है। निःशक्त बच्चों हेतु विशेष विद्यालय तथा समेकित व्यवस्था साथ–साथ चल रही थी। सन् 1980 के दशक तक बधिर, नेत्रहीन तथा मानसिक विकलांग बच्चों हेतु विद्यालयों की संख्या 150 से अधिक हो गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की कार्य योजना, 1992 के पश्चात् नियमित विद्यालयों में निःशक्त बच्चों का समेकन को गति प्राप्त हुआ।

निःशक्त बच्चों की शिक्षा के इतिहास में महत्वपूर्ण मोड़ तब आया जब सन् 1997 में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में महत्वपूर्ण घटक के रूप में समावेशी शिक्षा को मिलाया गया। तब से राष्ट्रीय विधि, न्यास (ट्रस्ट) की स्थापवना तथा अन्य सांविधिक निकायों की स्थापना एवं समावेशी व्यवस्था में निःशक्त बच्चों के शिक्षा हेतु भारत सरकार द्वारा महत्वपूर्ण वैश्विक पहलों पर के साथ होकर समावेशी शिक्षा की दिशा में प्रयास किए जा रहे है।

सर्व शिक्षा अभियान एवं राष्ट्र माध्यमिक शिक्षा अभियान एवं शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2016 की भूमिका निःशक्त बच्चों की समावेशी शिक्षा को और मजबूती प्रदान की है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009

शिक्षा का अधिकार अधिनियम विशेष आवश्यकता वाले बच्चों सहित 6–14 वर्ष की आयु समूह के सभी बच्चों के लिए बच्चों का निःशुलक एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकर प्रदान करता है।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम को 2012 में संशोधित किया गया जो 01 अगस्त 2012 से प्रभाव में जो तथा निः:शक्त बच्चों से सबन्धित प्रावधानों को बताता है।

जैसे

1. **शिक्षा** के अधिकार अधिनियम के भाग 2 उपबंध (डी) के अंतर्गत "अलाभान्वित समूह से संबंद्ध बच्चा" की परिभाषा में निःशक्त बच्चों का समावेशन।
2. निःशक्त बच्चों (मस्तिकष्काघात, मानसिक मंदता, आर्टिज्म तथा बहुनिःशक्तता वाले

बच्चों सहित) को निःशुलक एवं अनिवार्य शिक्षा लेने का अधिकार होगा।

निःशक्त जन अधिकार अधिनियम 2016

निःशक्त जन अधिकार अधिनियम, 2016 में निःशक्तता को एक विकासशील एवं गतिमान आवधारणा पर आधारित कहा गया है। निःशक्तता के प्रकारों को बढ़ाकर 21 कर दिया गया है तथा केन्द्र सरकार को निःशक्तता के प्रकर में अन्य अधिक प्रकार को जोड़ने का अधिकार है। नवीन अधिनियम निःशक्त जन अधिकार संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यू. एन. सी. आर. पी. डी.) के क्रम में है जिसका भारत केवल हस्ताक्षरी नहीं है, बल्कि अनेक देशों की तरह अंगीकार भी करता है।

प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में प्राथमिक **शिक्षा** एक अनिवार्य आवश्यकता है। यह पहली सीढ़ी है, जिसे सफलतापर्वूक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ संबंध प्राथमिक **शिक्षा** का है उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं है। राष्ट्रीय विचार धारा एव चरित्र के निर्माण करने में जितना महत्वपूर्ण स्थान प्राथमिक शिक्षा का है उतना किसी दूसरे सामाजिक, राजनीतिक या शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसके सबंध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर देश की पूरी जनसंख्या से होता है। वस्तुतः 1935 के भारत अधिनियम से प्राथमिक शिक्षा में गतिशीलता आई। इस अधिनियम के अनुसार प्रान्तीय स्वशासन की स्थापना हुई और 6 प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने सत्तारूढ़ होरक प्राथमिक शिक्षा के विकास को सम्भव बनाया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा ने अपने विकास के स्वर्णिम युग में प्रवेश किया। संसार के सभी प्रगतिशील देशों के समान भारत में भी बालकों एवं बालिकाओं की निशुल्क शिक्षा प्रदान करने के काफी प्रयास किये गये है।

संविधान के अनुसार प्राथमिक **शिक्षा** को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने के लिए 1950 से ही भारत सरकार प्रयत्नशील है। 1950 के भारतीय संविधान के एक नीति–निर्देशक सिद्धांत के अनुसार 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य **शिक्षा** की व्यवस्था 10 वर्ष के अन्दर हो जानी चाहिए थी। किन्तु यह लक्ष्य अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है। प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक रूप प्रदान करने के लिए देश के विभिन्न भागों में विद्यालयों की स्थापना एक आवश्यक शर्त्त है। अतः प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना ग्रामीण समुदाय के ऐसे केन्दीय भागों में की जाय, जहाँ से अन्य गाँव भी कम–से–कम दूरी पर हो। गाँवों में ताकि अन्य गाँवों के बच्चे सुगमता से पहुँच कर ज्ञान का अर्जन कर सके। भारत सरकार एवं बिहार सरकार ने इस दिशा में निर्णायक कदम उठाया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कठोरिया, अश्वनी कुमार (2015) "समावेशी शिक्षा के प्रति प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित अध्यापको के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन", एम. एड. लघु शोध प्रबन्ध, म. द. स. वि., अजमेर।

कपिल, एच. के. (2009) अनुसंधान विधियाँ, आगरा, एच. पी. भार्गव बुक हाउस।

कौल, लोकेश (2008) शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस।

गुप्ता, एस. एवं अग्रवाल, जे. सी. (2009), शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया एवं विशिष्ट आवश्यकताओं वाले अधिगमकर्त्ता, नई दिल्ली, शिप्रा पब्लिकेशन।

पाण्डेय, के. पी. (2008), शैक्षिक अनुसंधान वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन।

भटनागर, आर. पी. एवं भटनागर, मीनाक्षी (2010), मेरठ, शैक्षिक अनुसंधान, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।

भगेल, ललिता, (2013), "समावेशी शिक्षा के प्रभावी कार्यान्वयन के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का एक अध्ययन" एम. एड. लघु शोध प्रबंध, म. द. स. वि., अजमेर।

लिमये, संध्या (2016), "विकलांगजनों का सामाजिक समावेशनःमुद्दे व रणनीतियाँ" योजना, मई, 2016 पृष्ठ 25–27।

एन. सी. ई. आर. टी., (2005) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, नई दिल्ली, एन. सी. ई. आर. टी.।

रवि, शशांक (2010) "समावेशी शिक्षा के विभिन्न मुद्दे के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का एक अध्ययन" एम. एड. लघु शोध प्रबंध, म. द. स. वि., अजमेर।